छहढाला

(पं. दौलतरामजी कृत)

मंगलाचरण

(सोरठा)

तीन भुवन में सार, वीतराग-विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।

पहली ढाल

(चौपाई)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार।।१।।
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियौ अनादि, भूल आप को भरमत बादि।।२।।
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्रिय तन धार।।३।।
एक श्वास में अठ-दश बार, जन्म्यो-मर्‌यो भर्‌यो दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।४।।
दुर्लभ लहि ज्यौं चिंतामणी, त्यौं पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‌यो सही बहु पीर।।५।।
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशू हति खाये भूर।।६।।
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अति दीन।
छेदन-भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम-आतप त्रास।।७।।
बध-बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश भावतैं मर्‌यो घोर श्वभ्र-सागर में पर्‌यो।।८।।
तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बिच्छू सहस डसैं नहिं तिसो।
तहाँ राध-शोणित वाहिनी, कृमि-कुल कलित देह दाहिनी।।९।।

सेमर तरु दल जुत असिपत्र, असि ज्यौं देह विदारैं तत्र।
मेरु-समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।१०।।

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधु-नीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय।।११।।

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लौं सहे, करम-जोग तैं नरगति लहै।।१२।।

जननी उदर बस्यो नव मास, अंग-सकुचतैं पायो त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर।।१३।।

बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणीरत-रह्यौ।
अर्द्धमृतक-सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो।।१४।।

कभी अकाम-निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषयचाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो।।१५।।

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय।
तहँ तैं चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै।।१६।।